प्रो. मैक्समूलर और भ्रमित करने वाला उनका वैदिक अध्ययन

पाश्चात्य विद्वानों में जितनी ख्याति, प्रसिद्धि और श्लाघा प्रो० मैक्समूलर को मिली उतनी सम्भवत: अन्य किसी संस्कृत अध्येता को नहीं मिल सकी । यहां हम किंचित विस्तार में जाकर प्रो० मैक्समूलर की संस्कृत और वैदिक साहित्य के प्रति अवधारणा तथा उनके इस प्राप्य अध्ययन के मूल में निहित दृष्टि की जानकारी लेने का प्रयास करेंगे! किन्तु ऐसा करने से पूर्व उनके जीवन की एक संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की जा रही है।
■प्रो० मैक्समूलर का जीवन वृतान्त :-

जर्मनी के डेसाऊ नगर में फ्रेडरिक मैक्समूलर (जर्मन उच्चारण) का जन्म १८२३ में विल्लेल्म म्यूलर के यहाँ हुआ । उनकी माता का नाम अडेलहीड था जो जर्मनी के एक छोटे राज्य अनहाल्टे डेसाऊ के प्रधान मन्त्री की पुत्री थी । प्रारम्भ में अपने नगर में ही लैटिन और ग्रीक भाषाओं का अध्ययन करने के पश्चात् १८४१ में उन्होंने लीपजिग विश्वविद्यालय में प्रवेश किया । यहां तब तक संस्कृत विभाग की स्थापना हो चुकी थी । संस्कृत भाषा की श्रेष्ठता और उसके साहित्य की गरिमा को अनुभव कर मैक्समूलर को लैटिन और ग्रीक के क्लासिकल साहित्य से विरक्ति हो गई और इस विश्वविद्यालय के संस्कृत प्रोफेसर ब्रोकहाउस के मार्गदर्शन में उन्होंने संस्कृत पढ़ना आरम्भ कर दिया । आरम्भ में उनका अध्ययन कालिदास के नाटक अभिज्ञानशाकुन्तलम् तथा ऋग्वेद के कुछ अंश तक सीमित रहा ।२० वर्ष की आयु में उन्होंने “हितोपदेश” का जर्मन अनुवाद किया ।१८४३ में दर्शनशास्त्र में डाक्टरेट करने के पश्चात् उन्होंने भाषा विज्ञान और दर्शनशास्त्र विषयक अपने अध्ययन को जारी रखने के लिये १८४४ में बर्लिन में प्रवेश लिया । यहां तुलनात्मक भाषा विज्ञान के संस्थापक फ्रत्ज बॉप तथा दार्शनिक फीडरिश फान रोलिंग के मार्गदर्शन में कार्य किया ।

प्राचीन ग्रन्थों की प्रतिलिपियां प्राप्त करने तथा संस्कृत के मूल ग्रन्थों की पाण्डुलिपियाँ एकत्र करने के सिलसिले में वे १८४६ में इंगलैंड गये और ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्रथम बाँडेन प्रोफेसर एच० एच० विल्सन ने उनकी इस कार्य में सहायता की । विल्सन की सिफारिश से ही १८४८ में उनकी नियुक्ति ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में हुई जहाँ रह कर उसने १८४९-१८७४ की अवधि में छ: खण्डों में ऋग्वेद के संस्करण का सम्पादन और प्रकाशन किया । मैक्समूलर का अवशिष्ट जीवन भारतीय धर्म, दर्शन, साहित्य, भाषा विज्ञान जैसे विषयों के अध्ययन अध्यापन, चिन्तन और लेखन में ही व्यतीत हुआ । भारत विषयक उनके प्रशंसापूर्ण उद्गार India what it can teach us ? नामक पुस्तक में

उल्लिखित है ।१९०० में इस प्राच्य विद्याविद् का देहान्त हो गया । वे स्वामी दयानन्द से आयु में एक वर्ष बडे थे।

मैक्समूलर के प्राच्य विद्या और विशेषत: संस्कृत अध्ययन की पृष्ठभूमि के रूप में उनके धार्मिक विश्वासों और विशेषत: ईसाई मत के प्रति उनकी कट्टर आस्था तथा संस्कृत एवं वेदों के अध्ययन के पीछे उनके कतिपय प्रच्छन्न पूर्वाग्रहों का विवेचन और अनुशीलन आवश्यक है । इस प्रसंग में भारत में अंग्रेजी शिक्षा पद्धति के प्रवर्तक टी० बी० मैकॉले और प्रो० मैक्समूलर के पारस्परिक सम्बन्धों और विचार विनिमय की चर्चा करनी अत्यन्त आवश्यक है । लॉर्ड मैकाले (पूरा नाम थामस् बेंबिंग्टन मैकाले) को अंग्रेजी समाज एक इतिहासकार, निबन्धकार तथा राजनीतिज्ञ के रूप में जानता है । उनकी शिक्षा-दीक्षा एक कट्टर ईसाई सम्प्रदाय के अनुयायी के रूप में हुई थी । । १८३४ में वह भारत के गवर्नर जनरल की कौंसिल के कानूनी सलाहकार के रूप में भारत आया और चार वर्ष तक यहां रहा । १८३९ में वह इंगलैंड लौट गया और वहां की संसद का सदस्य चुन लिया गया ।

उसने भारत की शिक्षा नीति का निर्धारण किया और इसके पीछे निहित अपनी भावना को व्यक्त करते हुए १२ अक्टूबर १८३६ को अपने पिता को कलकत्ता से जो पत्र लिखा उसमें यह विश्वास प्रकट किया था कि *"जो हिन्दू अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त कर लेगा वह अपने धर्म के साथ कभी भी जुड़ा नहीं रहेगा, कुछ लोग तो केवल कहने भर के लिये अपने को हिन्दू कहेंगे, अन्य ईसाई बन जायेगे।"* उसने यहाँ तक लिखा है कि यदि हमारी शिक्षा विषयक योजना को चालू रक्खा गया तो आने वाले तीस वर्षों में बंगाल की कुलीन जातियों में कोई भी मूर्तिपूजक (हिन्दू) नहीं बचेगा।

मैकाले और मैक्समूलर की भेट २८ दिसम्बर १८५५ को हुई । इस भेट में मैकाले ने मैक्समूलर को प्रेरणा देते हुए कहा कि वह संस्कृत साहित्य में निहित तथ्यों को इस प्रकार प्रस्तुत करें जिससे भारत में ईसाई मत का प्रचार एवं उत्कर्ष हो, तथा वहां के पुरातन हिन्दू धर्म और तत्सम्बद्ध आस्थाओं को त्याग कर अधिकांश भारतवासी ईसाइयत को स्वीकार कर लें । यह कहना तो उचित नहीं है कि जिस समय मैक्समूलर ने संस्कृत का अध्ययन आरम्भ किया था, तभी उसका ध्येय और विचार इसके द्वारा वेदादि संस्कृत शास्त्रों की दूषित तथा भ्रामक व्याख्या कर उसके प्रति पाठक वर्ग की विरक्ति उत्पन्न करना रहा था। निश्चय ही विद्याव्यासंग और भारतीय वाङ्मय एवं चिन्तन के प्रति उसके लगाव ने एक निष्पक्ष अध्येता तथा अनुसंधित्सु के रूप में ही उसे इस क्षेत्र में प्रवेश कराया था । किन्तु वह मैकाले द्वारा दिये गये, धन, वैभव,प्रतिष्ठा और ख्याति के प्रलोभनों से स्वयं को असंयुक्त नहीं रख सका और उसने कूट चातुरी वाले मैकाले के समक्ष आत्म समर्पण कर दिया ।

अब उसे ईस्ट इण्डिया कम्पनी के द्वारा पूरा संरक्षण तथा आर्थिक सहायता दी जाने लगी । इसका प्रयोजन इतना मात्र ही था कि वह ऑक्सफोर्ड की इस गद्दी पर बैठ कर प्रच्छन्न रूप से ईसाइयत के प्रचार प्रसार में सहायक बने । कारण कि इस बॉडेन चेयर के संस्थापक कर्नन बॉर्डन ने १५ अगस्त १८११ को लिखी अपनी वसीयत में इस चेयर की स्थापना के पीछे निहित अपने उद्देश्य को इस प्रकार स्पष्ट कर दिया था –

*"The Special object of the munificent begust was to promote the translation of

scriptures into Sanskrit, so as to enable his countrymen to proceed in the conversion of the natives of India to the Christian Religion."
*अर्थात् इस कार्य का मूल्य उद्देश्य ईसाई शास्त्रों का संस्कृत अनुवाद तैयार करवाना है जिसकी सहायता से मेरे देशवासी भारतवासियों को ईसाई धर्म में परिणत करने के कार्य में अग्रसर हों।

मैक्समूलर की ईसाइयत के प्रति अनुरक्ति कोई छिपा तथ्य नहीं है । उसने यह बात भी खुलकर स्वीकार की है कि भारतीय वाङमय तथा वैदिक साहित्य के अध्ययनं, व्याख्या और अनुवाद के पीछे भी उसकी ईसाई धर्म प्रचारक की मनोवृत्ति सदा से कार्यशील रही है । यहां कतिपय उदाहरणों तथा प्रमाणों से मैक्समूलर की उपर्युक्त धारणा को सिद्ध किया जाना आवश्यक है –
१८६६ में अपनी पत्नी के नाम लिखे एक पत्र में उसने स्वीकार किया कि मेरा ऋग्वेद का यह संस्करण और अनुवाद भारत के भाग्य को निश्चित रूप से प्रभावित करेगा । यह वेद ही भारतवासियों का मूल धर्म है तथा इस मूल से शाखा-प्रशाखा रूप जो भारतीय धर्म रूपी महा विटप गत तीन हजार वर्षों से फला फूला है, उसे नष्ट करने के लिए भारत वासियों को यह भी बताना आवश्यक है कि उनके वर्तमान धर्म का मूल यह वेद कैसा है ? अब उसने हिन्दू धर्म को भारत की भूमि से जड़ से उखाड़ फेंकने का पक्का इरादा कर लिया तथा उसके स्थान पर ईसाइयत के बिरवे को रोप कर पुष्पित और पल्लवित करने का उसका पक्का इरादा था। डचूक ऑफ आर्गाइल (तत्कालीन भारत मंत्री) को १६ दिसम्बर १८६८ को लिखे अपने पत्र में उसने स्पष्ट कहा- "भारत का प्राचीन धर्म अब मरणोन्मुखी है और ईसाइयत यदि उसका स्थान लेने के लिये आगे नहीं आती है तो इसमें किसका दोष होगा।" किन्तु यह भी सत्य है कि न तो ३० वर्षों के भीतर बंगाल से हिन्दुओं को उन्मूलित करने की मैकाले की भविष्यवाणी और मैक्समूलर का यह विश्वास ही सत्य सिद्ध हुआ कि भारत का धर्म मृतप्राय: हो चुका है।

यहां यह भी ध्यातव्य है कि १८५५ में लार्ड पामस्टर्न इंग्लैंड का प्रधान मंत्री बना था । इसने भी अपने इस विश्वास को खुले तौर पर प्रकट कर दिया था कि भारत में ईसाइयत का प्रचार करना ही ब्रिटेन का एक मात्र लक्ष्य है । १८५५ में ही मैकाले की मैक्समूलर से भेट हई थी जिसमें उस कूटनीतिज्ञ ने इस संस्कृत विद्वान् को हिन्दू शास्त्रों की विकृत त्रुटिपूर्ण तथा पूर्वाग्रह युक्त व्याख्या कर भारत में ईसाइयत के भविष्य को प्रशस्त करने का आग्रह किया और उसके इस सुझाव को उस युवा जर्मन विद्वान् ने अपनी लौकिक उन्नति और ख्याति के लालच में स्वीकार भी कर लिया था ।

मैं मैक्समूलर की दुष्टतापूर्ण प्रवृत्ति की ओर भी पाठकों का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ । विगत शताब्दी में ही कुछ ऐसे फ्रांसीसी तथा जर्मन दार्शनिक और विचारक हुए हैं, जिन्होंने पूर्ण ईमानदारी के साथ भारतीय सभ्यता, संस्कृति, धर्म दर्शन तथा जीवन पद्धति की उत्कृष्टता तथा उदात्तता को स्वीकार किया था । उनके द्वारा किये गये भारत के तत्व चिंतन के इस प्रशस्ति-पाठ का सहन करना मैक्समूलर जैसे कट्टर ईसाई के लिये सम्भव ही नहीं था । अत: उसने यत्र तत्र उक्त कोटि के यूरोपीय विद्धानों के विचारों की निराधार अलोचना की ।
प्रसिद्ध फ्रांसीसी विद्वान् लई जेकालियट ने अपने ग्रन्थ (La Bible dans L, Inde (Bible in India) में भारत की गरिमा का भावस्फूर्त वर्णन करते हुए उसको Candle of Humanity तथा Land of Love कहा । भारत की इस प्रशंसा का मैक्समूलर के लिए सहन करना कठिन था । उसने जैकालियट के इस उद्गार पर टीका करते हुए लिखा-

The author seems to have been taken in by the Brahmins in India लेखक ऐसा लगता है, भारत के ब्राह्मणों के प्रभाव में आकर बढ़ गया है ।

जब जर्मन दार्शनिक शापनहार ने उपनिषदों में निहित ब्रह्म विद्या की प्रशस्ति में अपने सम्पूर्ण अभिव्यजंना कौशल को ही समाप्त कर दिया और यह आशा प्रकट की कि एक दिन आयेगा जब भारत की प्रज्ञा का प्रभाव पुनः यूरोप की ओर मुड़ेगा तथा हम युरोपवासियों के ज्ञान और चिंतन में सम्पूर्ण परिवर्तन लायेगा – Indian wisdom will flow back upon Europe, and produce a thorough change in our knowledge and thinking. तो ईसाइयत के अन्धविश्वासी मैक्समूलर ने उक्त कथन का उपहास करते हुए लिखा- "मुझे लगता है कि यहाँ भी यह महान् दार्शनिक (शॉपनहार) धोखा खा गया और अपने अत्यधिक उत्साह के कारण यह एक गौण वस्तु को प्रधानता दे बैठा । वह उपनिषदों के कृष्ण पक्ष की ओर से आँखे मूंदे हुए है और ईसाई गास्पेल में निहित शाश्वत सत्य की प्रकाशमान किरणों से अपने को जानबूझकर कर अनजान बनाये हुए हैं।"

Here again the great Philosopher seems to me to have allowed himself to be carried away too far by this enthusiasm for the less known. He is blind to the dark side of the Upanishads and he willfully shuts his eyes against the bright rays of eternal truths in the (Chris tian) Gospel.

वेदों के अध्ययन का मैक्समूलर का प्रयास कितना छिछला, अविवेकपूर्ण वैदिक अध्ययन की ऐतिहासिक और सर्वमान्य प्रक्रियाओं की उपेक्षा और अवहेलना करता हुआ तथा पदे पदे ईसाई विश्वासों की सत्यता के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को स्वीकार करने के कारण पूर्वाग्रहपूर्ण तथा अविश्वासनीय बन गया है, यह हम आगे चल कर देखेंगे यहाँ तो हम यह बताना चाहते हैं कि जब १८७७ में ऋषि दयानन्द द्वारा वेद की भाष्यरचना की बात मैक्समूलर को ज्ञात हुई और श्री महाराज कृत ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका तथा मासिक पत्र के रूप में प्रकाशित होने वाले ऋग्वेद के भाष्य का वह नियमित ग्राहक बना तो उसने अनुभव किया कि यदि निकट भविष्य में दयानन्द सरस्वती का यह वेद भाष्य सारस्वत समाज में आदर प्राप्त कर लेता है और इसके कारण मध्यकाल में लुप्त हुई वेदों की गरिमा पुनः प्रतिष्ठित हो जाती है तो वेदों को कलुषित, गर्हित, बालिश तथा अनेक विडम्बनाओं से युक्त सिद्ध करने का उसका यह पक्षपात पूर्ण प्रयास निरर्थक हो जायेगा । फलतः उसने स्वामी दयानन्द की वेदभाष्य पद्धति का विरोध करने की ठानी । एक पारसी सुधारक बहरामजी मलाबारी के नाम २९ जनवरी १८८२ के अपने पत्र में उसने लिखा –
"इस पुरातन धर्म का वास्तविक और ऐतिहासिक मूल्य और महत्व क्या है, यह मैं उन लोगों को बता देना चाहता हूँ जो इसके बारे में एक यूरोपियन या ईसाई के एकान्तिक दृष्टिकोण से नहीं, अपितु ऐतिहासिक दृष्टि से जानना चाहते हैं । मैं वैदिक अध्ययन को उत्पन्न दो खतरों से ऐसे लोगों को सावधान करना चाहता हूँ । एक खतरा तो उन आधे यूरोपीय बने नौजवानों की ओर से है जो भारत के इस प्राचीन राष्ट्रीय धर्म (वेद प्रतिपादित धर्म) का अवमूल्यन करने पर तुले हैं । (यहाँ तक तो मैक्समूलर का कथन ठीक है) किन्तु मै दयानन्द सरस्वती द्वारा वेदों का अत्यधिक महत्व आंकने के प्रयास को भी अच्छा नहीं समझता जिसमें वे वेदों से उन बातों को सिद्ध करते हैं जो वस्तुतः उनमें हैं ही नहीं ।"
मैक्समूलर का अभिप्राय स्वामी दयानन्द का वेदों को सर्व विद्याओं (आध्यात्मिक तथा भौतिक) का मूल

घोषित करने से हैं । इस आपत्ति को प्रकट करते हुए वह यह भूल जाता है कि वेदों का सर्वविद्यामयत्व अकेले दयानन्द का ही मन्तव्य नहीं रहा। सभी प्राचीन और अनेक अर्वाचीन वेद-चिन्तकों ने वेदों के समस्त ज्ञान विज्ञान का मूलाधार होने को स्वीकार किया है । इस प्रसंग में श्री अरविंद की सम्मति प्रायः उद्धृत की जाती है।

मैक्समूलर की दयानन्द विषयक इस कटूक्ति के पीछे जो तथ्य छिपा है, वह तो स्पष्ट ही है । स्वामी दयानन्द ने भी विल्सन, मैक्समूलर आदि के वेद विषयक कार्य को सूक्ष्मेक्षिका से देख लिया था और अपनी वेदभाष्य भूमिका में तो उनके वेदार्थ पर यत्र-तत्र टिप्पणियाँ की ही, सत्यार्थप्रकाश में तो स्पष्ट ही लिख दिया- "जितना संस्कृत मोक्षमूलर साहब पढ़े हैं उतना कोई नहीं पढ़ा, यह बात कहने मात्र है, क्योंकि यस्मिन्देशेद्रु मोनास्ति तत्रैरण्डोऽपिद्रमायते । अर्थात् जिस देश में कोई वृक्ष नहीं होता उस देश में एरण्ड ही को बड़ा वृक्ष मान लेते हैं।"
■?प्रो. मैक्समूलर और वेद :-
मैक्समूलर को यह तो स्वीकार करना ही पड़ा था कि आर्य जाति में वेद ही प्राचीनतम ग्रन्थ है और शताब्दियों से उसे जिस प्रकार पूर्ण सुरक्षित रक्खा गया है, वह किसी आश्चर्य से कम नहीं है : –
In the Aryan world, Veda is certainly the oldest book and its preservation amounts to a marvel. (What is the Veda).
मैक्समूलर इस तथ्य से भी अनभिज्ञ नहीं था कि भारतीय परम्परा में वेदों को ईश्वर प्रदत्त समझा जाता है तथा इस अपौरूषेयता के सिद्धान्त की जितनी सूक्ष्मता और गहराई से भारत में समीक्षा की गई है, वैसा अन्य देशों में स्वीकृत ईश्वरीय ज्ञान समझे जाने वाले ग्रन्थों के लिये कभी नहीं हुआ :

"In no country, I believe, has the theory of revela tion has been so minutely discussed and elaborated as in India."
तथापि वेद के अपौरूषेयत्व की भारतीय परम्परा को अस्वीकार करते हुए मैक्समूलर इस बात को कहे बिना रहता नहीं कि वैदिक सूक्तों के रचयिता कुछ ऋषि (मनुष्य) या उनके मित्र ही थे, जिन्होंने देवताओं को प्रसन्न करने के लिये इन मन्त्रों की रचना उसी प्रकार की, जैसे कोई बढ़ई रथ बनाता है :-
In many a hymns the author says plainly that he or his friend made it to please the gods, that he made it as a carpenter makes a chariot.
मैक्समूलर ने वेदों का मनुष्य कर्तृत्व इतनी सरलता से तो घोषित कर दिया किन्तु उसे न्याय, वेदान्त, मीमांसा आदि भारतीय दर्शनों में प्रतिपादित वेदों के ईश्वर कर्तृत्व एवं अपौरूषेयत्व की सिद्धि में दिये गये प्रमाणों की इतने सहज भाव से उपेक्षा नहीं करनी चाहिये थी।

वेदों के आविर्भावकाल के विषय में मैक्समूलर ने जो विचार रक्खे हैं उन्हें कालान्तर में कोई भी वैदिक अध्येता स्वीकार नहीं कर सका । उसने वेद काल निर्णय के लिये जो सुक्ति श्रृंखला आविष्कृत की, वह नितान्त हास्यास्पद और अविश्वसनीय सिद्ध हुई । वह यह तो मान कर चला कि वैदिक साहित्य निश्चय ही बुद्ध पूर्व का है। अब वह वैदिक साहित्य को संहिता, ब्राह्मण और सूत्र इन तीन श्रेणियों में विभाजित करता है। सूत्रों का काल पर्याप्त परवर्ती है । उसके अनुसार यदि ब्राह्मण रचना काल और सूत्र निर्माण काल में ५००-६०० वर्षों का अन्तर माना जाये तो इतना ही अन्तर संहिता और ब्राह्मणों के काल में माना जा सकता है । इस प्रकार वह वेदों का रचना काल ईसा के १२०० या १५०० पूर्व का स्वीकार

करता है । मैक्समूलर के इस मत की आलोचना में इतना कहना ही पर्याप्त है कि उससे भिन्न किसी अन्य पाश्चात्य विद्वान ने इस कथन को स्वीकार नहीं किया है । बाल गंगाधर तिलक ज्योतिषीय गणना के आधार पर इस काल को ईसा के कई लाख वर्ष पूर्व सिद्ध करते हैं तो उमेशचन्द्र विद्यारत्न और अविनाश चन्द्र दास ने इस तिथि को और पीछे ले जाना स्वीकार किया है । यह बात नहीं कि मैक्समूलर वेदोस्पत्ति के काल विषयक अपनी इस उत्पत्ति को लेकर पूर्ण आश्वस्त ही था । उन्हें यह भी आशा नहीं थी कि उनकी इस धारणा को वेद के अध्येता वर्ग में प्रतिष्ठा प्राप्त होगी । अतः उन्होंने स्वयं ही स्वीकार किया :-

Though this date has met with very general accep tance. I am the very last person to consider it firmly established.

अर्थात् यद्यपि वेदों का यह रचना काल सामान्यतया मान लिया गया है, फिर भी इसे सर्वांश में सत्य स्वीकार करना मेरे लिये भी कठिन है।

इससे पूर्व कि हम मैक्समूलर की वैदिक देवताओं तथा वेद प्रतिपादित धर्म विषयक मान्यताओं की समीक्षा करें, यह लिख देना आवश्यक है कि अपने अन्य पाश्चात्य मित्रों की ही भाँति वह वेद की संज्ञा केवल ऋग्वेद को ही देता हैं । यजु, साम और अथर्व को वह वेद के नाम से पुकारना अनुचित समझता है । अपने कथन के समर्थन में प्रस्तुत करने के लिये उसके पास दो ही युक्तियाँ है – प्रथम तो यह कि ऋग्वेद के मंत्रों की ही सामवेद में पुनरुक्ति हुई है, यजुर्वेद के मंत्र मात्र यज्ञ यागादि में प्रयुक्त किये जाने के अतिरिक्त कोई उपयोगिता नहीं रखते तथा अर्थववेद जादू टोने, मारण-मोहन, उच्चाटन आदि के टोटकों का संग्रह है- “The other so called Vedas contain . chiefly extracts from the Rig-veda, together with sacrifi cial formula Charms, incantations, Many of them no doubt extremely curious, But never likely to interest any one except the sanskrit scholar by profession.”

उसने तो यह फैसला भी दे दिया कि पुरोहिताई के पेशों को आखियार करने वाले संस्कृत विद्वानों से भिन्न इन तीन वेदों में भला किस की रुचि हो सकती है । मैक्समूलर के इस आक्षेप का उत्तर देने के लिये बहुत विस्तार में जाना पड़ेगा क्योंकि वह यजुर्वेद प्रतिपादित कर्मकाण्ड, सामवेद प्रतिपादित उपासना तथा अथर्ववेदोक्त विज्ञान की सहज ही उपेक्षा कर जाता है ।

मैक्समूलर ने वेद मंत्रों के विषय में जो विचार व्यक्त किये है उनमें सर्वत्र वदतोव्याघात तथा असंगति दिखाई पड़ती है । कहीं तो उन्हें वेद मंत्रों में अनेक उदात्त तथा महनीय तत्व लक्षित होते हैं तो अन्यत्र वे कुछ मंत्रों को बालिश (Childish), कठिन (Tedious) तुच्छ (Low) तथा साधारण कोटि का (Common place) कहने से बिरत नहीं होते । परन्तु यह कहते हुए वे अपने कथन की पुष्टि में कोई प्रमाण या उदाहरण नहीं देते, जिससे उनकी बात को सत्य माना जा सके । अतः यही कहना होगा कि – लक्षणप्रभाणाभ्यावस्तुसिद्धिः न तु प्रतिज्ञामात्रेण उनकी एतद्विषयक कुछ अन्य टिप्पणियाँ देखे –

I remind you again that the veda contains a great deal of what is childish and foolish, though very little or what is bad and objectionable.....many hymns are utterly meaningless and insipid. अर्थात् मैं आपको एक बार पुनः यह बतला दूं कि वेद में पर्याप्त मात्रा में बचकानापन और मूर्खता के भावों का उल्लेख है यद्यपि उसमें ऐसे तत्व कम है जो बुरे या आपत्तिजनक कहे जा सकते हैं । कई सूक्त तो नितान्त अर्थ शून्य और नीरस है ।” यह गनीमत है कि

मैक्समूलर ने वेदों में विद्यमान आपत्तिजनक अंशों की संख्या कम ही मानी, अन्यथा चारों वेदों के अंग्रेजी अनुवादक आर०टी०एच० ग्रिफिथ ने तो यहाँ तक कहा था कि कतिपय वेद मंत्र तो इतने अश्लील और जुगुप्साजनक हैं कि उसका अंग्रेजी अनुवाद करना भी उन्हें अनुचित लगा और उन मंत्रों के अर्थ उन्होंने लैटिन में लिखे ।

जिस प्रकार प्रो० ए. ए. मैकडॉनल ने ऋग्वेद में आये पूषा देवता के सूक्त के तत्वार्थ को न समझकर उनको गडरियों का गीत कहा, उसी भाँति मैक्समूलर भी वेदों को भेड़ चराने वालों तथा कृषकों क साधे भावों को व्यक्त करने वाले गीत कहे तो उन्हें कौन रोक सकता है- 'Simplest thoughts of shepherds and cultiva tors of the land.'

मैक्समूलर वेद के धर्म को बहदेवतावादी मानता है न कि एकेश्वरवादी । उसके अनुसार मंत्रों में विभिन्न नामों से भिन्न-भिन्न व्यक्त और अव्यक्त देवताओं की स्तुति गाई गई है – The religion of veda is polytheism, not monotheism Deities are invoked by different names Some clear and intelli gible, such as अग्नि, सूर्य, ऊषा, मरुत, पृथ्वी, आप, नदी Oth ers such as, वरूण, मित्र, इन्दु इत्यादि । यों तो मैक्समूलर ऋग्वेद के प्रसिद्ध मंत्र एक सद् विप्रा बहुधा वदन्ति । ऋ० १।१६४।४६१ में व्यक्त एकेश्वरवाद से भी सुपरिचित है, फिर भी अपनी जिद के कारण वे इस तथ्य को शब्दों की कलाबाजी के द्वारा अस्वीकार कर देते हैं । उसके इस वक्तव्य को देखिये –
I could not even answer this question. If you were to ask it, whether the religion of the veda was polytheis tic or monotheistic. Monotheistic in the usual sense of that word. It is decidedly not, though there are hymns that assert the unity of the Divine as fearlessly as any passage of the old Testament or the New Testament or the Koran. (The Religion of the veda p. 43) यह स्वीकार करते हुए भी कि वेदों में ऐसे स्पष्ट एवं निर्भीक कथन मिलते हैं, जो दिव्य सत्ता (परमात्मा) की एकता का वर्णन करते है, यह कहना कि यह एकेश्वरवाद नहीं, क्या शब्दाडम्बर नहीं है । आश्चर्य है कि मैक्समूलर को पुराने और नये अहदनामें तथा कुरान में तो एकेश्वरवाद नजर आया, किन्तु परमात्मा की एक अद्वितीय सत्ता को सर्वत्र घोषित करने वाले वेदों में वह उस एक परमतत्व की सत्ता को देखने में संकोच करता है।

वेद में एकेश्वरवाद है या बहुदेवतावाद, इस विवाद में स्वयं को अलग थलग रख कर मैक्समूलर ने वेद के संदर्भ में एक नये शब्द को गढ़ा, यह था होनोथीज्म । इस शब्द के द्वारा वह यह दिखाना चाहता था कि वेदों में न तो शुद्ध एकेश्वरवाद है और न स्पष्ट बहदेववाद । अपितु जो वेद मंत्र जिस देवता को स्तुति करता है, वह उस स्थान पर उसे ही सर्वोच्च घोषित कर देता है Worship of single Gods, each occupying for a time a supreme po sition. हमारा निवेदन है कि प्रो० मैक्समूलर को इस नये शब्द को गढ़ने की आवश्यकता ही क्या थी । निश्चय ही जिन वेद मंत्रो में अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण आदि देवताओं का स्तवन है, वह उस एक परमेश्वरीय सत्ता के ही विभिन्न नाम है जो उसका तत् तत् विभूति, शक्ति, गुणों तथा महत्व के द्योतक है, अत: ये सभी मंत्र प्रकारान्तर से एक परमात्म देव की ही स्तुति करते हैं । श्री अरविंद ने अपने प्रसिद्ध लेखन् दयानन्द एण्ड वेद में मैक्समूलर के इस नव आविष्कृत हीनोथीज्म का उपहास करते हुए वैदिक एकेश्वरवाद को वेद का निर्विवाद सिद्धान्त माना है।

वस्तुत: अन्य पाश्चात्य विद्वानों की ही भांति मैक्समूलर ने भी वेदों का अध्ययन ऐतिहासिक और आर्यजाति की सामाजिक स्थिति का बयान करने वाले ग्रन्थ के रूप में ही किया । भारतीय दर्शन और चिन्तन में वेदों को जो उच्च स्थान प्राप्त रहा है तथा वे आर्यजाति के धार्मिक, आध्यात्मिक तथा दार्शनिक विचारों के जिस प्रकार आदि मूल और उत्स रहे हैं, इस सबकी उपेक्षा कर यह जर्मन प्रोफेसर वेदों में राजाओं के युद्ध, मंत्रियों या पुरोहितों की प्रतिद्वन्द्विता, युद्धों में विजय और पराजय तथा वीर गीतों को ही पाता है ।

We meet occasionally with wars of kings, with ri valries of ministers, with triumphs and defeats with war songs and imprecations (The Veda and Zenda Avesta P. 10)

यह वाक्य लिखकर मैक्समूलर ने उस विवाद की ओर संकेत किया है कि क्या वेद में लौकिक इतिहास और ऐतिहासिक घटनाओं का निबन्धन हुआ है । वेदों में जो ऐतिहासिक व्यक्ति, स्थान और घटनाओं के आपातत: विवरण मिलते हैं, उनके बारे में निरूक्तकार यास्क के मत को स्वीकार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह इतिहास अनित्य कोटि का नहीं है, किंतु किसी शाश्वत नियम या परिदृश्य को हृदययंगम कराने के लिये वेद ने कल्पित आख्यानों का सहारा लिया है। कारण कि यदि भारतीय परम्परा के अनुसार वेदों को अपौरूषेय माना जाये तो उसमें अनित्य इतिहास का पाया जाना असंगत ही होगा । सायणादि मध्यकालीन भाष्यकारों का भी यही मत था, यह दूसरी बात है कि वे इस प्रतिज्ञा का निर्वाह करने में स्वयं ही असफल रहे हैं । स्वामी दयानन्द और उनके अनुवर्ती वेदव्याख्याताओं ने ऐसे आपतत: प्रतीत होने वाले इतिहास की सुसंगत व्याख्या की है।

मैक्समूलर के वेद विषयक विचारों में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन कालान्तर में प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ा। कई विद्वानों की यह धारणा है कि महर्षि दयानन्द के वेद विषयक सुसंगत, तथ्यपूर्ण तथा परम्परानुमोदित विचारों से प्रभावित होकर ही कुछ समय बाद मैक्समूलर संसार के इस आदिम ज्ञान के प्रति अधिक उदार तथा तर्कसंगत दृष्टिकोण बना सका। उसके ग्रन्थ India : what it can teach us ? में भारतीय तत्व चिन्तन तथा वैदिक साहित्य का जो श्लाघायुक्त मूल्यांकन किया गया है वह उस विवेचन से कहीं अधिक तथ्य पूर्ण तथा आग्रह रहित है जो इस प्रोफेसर ने उस समय किया था जब वह ईसाइयत की सर्वश्रेष्ठता की आग्रहपूर्ण धारणा से ग्रस्त था ।

तथापि हमें यह लिखने में कोई संकोच नहीं है कि अनेक प्रबुद्ध भारतीय विद्वान, धर्माचार्य तथा तत्वविदों ने मैक्समूलर के ईसाई आग्रह से युक्त मूल मनोभाव को नहीं समझा है और वे उसके अनावश्यक स्तुति पाठ में ही लगे रहे । ऐसे व्यक्तियों में अग्रगण्य थे स्वामी विवेकानन्द, जिन्होंने मैक्समूलर को वैदिक-मन्त्र द्रष्टा ऋषियों के समकक्ष ही रक्खा, उसे वेदान्तियों में महान् वेदान्ती बताया और उसे भारतभक्त घोषित करते हुए उनके स्वयं के मन को पता नहीं किस हीन भावना ने जकड़ लिया जिसके कारण वे कह बैठे- "भारत के प्रति उनके मन में जो प्रेम है, काश, उसका सौंवां, अंश भी मुझमें अपनी भारतभूमि के प्रति होता ।

बात यह थी कि अपने इंगलैंड प्रवास के समय स्वामी विवेकानन्द की भेट मैक्समूलर से हुई थी और वे उस वृद्ध वेदाभ्यासी की सारस्वत साधना से अत्यधिक प्रभावित हुए थे । परन्तु इसमें एक प्रच्छन्न कारण भी था । मैक्समूलर ने स्वामी विवेकानन्द के गुरु परमहंस रामकृष्ण की जीवनी और उपदेशों पर एक सुन्दर ग्रन्थ Rama-Krishna : His Life and Teachings लिखा था । वार्तालाप के एक प्रसंग

में तो स्वामी विवेकानन्द ने मैक्समूलर की प्रशंसा में सीमातीत अतिशयोक्ति कर दी । उनका यह कथन युक्तिपूर्ण कथन की सीमा का अतिक्रमण कर विचार शून्य भावुकता की परिधि में प्रविष्ट होता सा प्रतीत होता है। उन्होंने कहा, "मुझे कभी कभी ऐसा अनुमान होता है कि स्वयं सायणाचार्य ने अपने भाष्य का अपने ही आप उद्धार करने के लिए मैक्समूलर के रूप में पुनः जन्म लिया है ।" किन्तु विवेकानन्द की भावुकतापूर्ण बातों को शायद ही किसी ने गम्भीरता से लिया है।

सत्य तो यह है कि १९०० मे दिवंगत हुए इस जर्मन प्रोफेसर को प्रायः विद्याविद् लगभग भूल ही गये थे, क्योंकि वैदिक साहित्य विषयक उसका विवेचन उस काल के किसी अन्य पाश्चात्य विद्वान द्वारा किये गये काम से किसी भी प्रकार उत्कृष्ट या श्रेष्ठ नहीं था । लगभग पौन शताब्दी के पश्चात् एक विवादास्पद लेखक नीरद चौधरी ने मैक्समूलर की A Scholar : Extra Ordinary लिख कर मानो उसे पुनरुज्जीवित कर दिया । आवश्यकता इस बात की है कि मैक्समूलर के प्राच्य विद्या विषयक काम का आग्रह रहित मूल्यांकन करते हुए इस तथ्य को दृष्टि से ओझल नहीं किया जावे कि प्रकृत्या वह ईसाई मत की श्रेष्ठता की अवधारणाओं को लेकर ही इस कार्य में प्रवृत्त हुआ था ।
#MaxMuller
#Maxmuller_A_Fraud

साभार – https://ne-np.facebook.com/AryaGarjna से